REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 10 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2021

स्वतंत्रता एवं उत्तरदायित्व : एक समग्र अध्ययन

मदन मोहन मालवीय[1] , डॉ. मनोज कुमार[2]
[1]पी.जी. कॉलेज, भाटपार रानी, देवरिया।
[2]एशोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,दर्शन शास्त्र विभाग

स्वतंत्रता अथवा आजादी मानव जीवन में एक नैसर्गिक एवं अनिवार्य अवधारणा है। बिना स्वतंत्रता के मानव का जीवन निरर्थक एवं मूल्यहीन है। मानव का भौतिक, मानसिक एवं नैतिक विकास मात्र स्वतंत्रता के माहौल में ही सम्भव है। आजादी के अभाव में मानव का व्यक्तित्व संकीर्ण एवं जर्जर होगा। स्वतंत्रता मानव जीवन का सार है, उसका प्राण है। आजादी मानव की सबसे शक्तिशाली मांग है। एच0जी0 वेल्स ने कहा भी है– विश्व का इतिहास स्वतंत्रता के संघर्ष का इतिहास है। राजनीति शास्त्र में सर्वप्रिय प्रत्यय स्वतंत्रता है। अमीर, गरीब, किसान, व्यापारी, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक एवं अन्य सभी सर्वसाधारण लोग इस अवधारणा का प्रयोग करते हैं। पर जैसा कि गिलक्राइस्ट ने कहा है–प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में किसी न किसी प्रकार की स्वतंत्रता की अस्पष्ट धारणा एवं उसकी प्राप्ति की इच्छा रहती है। किन्तु इस शब्द का प्रयोग करने वाले दस व्यक्तियों में शायद ही दो व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो यह बतला सकें कि उसके कहने का वास्तविक अभिप्राय क्या है। यदि इस तरह के व्यक्ति मिल भी जाएं तो वे अपनी परिभाषाओं में एक दूसरे से सहमत नहीं होंगे। वस्तुतः यही कारण है कि विभिन्न विचारकों ने अपने–अपने ढंग से स्वतंत्रता को परिभाषित किया है। रूसो महोदय मानव की पूर्ण आजादी को स्वतंत्रता मानते हैं। उनको किसी भी प्रकार के बंधन से परहेज है क्योंकि वे मानते हैं कि मानव स्वतंत्र पैदा हुआ है किन्तु सर्वत्र वह जंजीरों से जकड़ा हुआ है। हाब्स के विचार भी रूसो की भाँति हैं। उन्होंने स्वतंत्रता का अर्थ बंधनों का अभाव से लिया है। जे0एस0 मिल भी किसी भी तरह के बंधनों का न होना आजादी मानते हैं। जॉन लॉक, एडम स्मिथ, बेंथम, स्पेन्सर जैसे उदारवादी विचारक भी स्वतंत्रता का अर्थ प्रतिबंधों का अभाव मानते हैं। उनके अनुसार मानव को अपने अंतःकरण के अनुरूप कार्य करने की छूट होनी चाहिए। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व बौद्धिक क्षेत्र में स्वतंत्रता होनी चाहिए। इनके अनुसार राज्य के कार्य अत्यन्त सीमित होने चाहिए। इनका स्पष्ट मत है कि व्यक्ति साध्य है, साधन नहीं है। वे प्राकृतिक अवस्था में विश्वास करते हैं जिसमें व्यक्ति को अबाध अधिकार प्राप्त था। वे मानव की विवेक शक्ति के प्रबल पक्षकार हैं। जान लॉक कहते हैं कि राज्य की उत्पत्ति मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों के संरक्षण के लिए हुआ है। लॉक के अनुसार राज्य का कार्य बाह्य आक्रमणों से रक्षा, शांति व व्यवस्था बनाए रखना तथा जीवन, सम्पत्ति एवं अधिकारों का संरक्षण है। हरबर्ट स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक '**मैन बर्सेस स्टेट**' में राज्य के कार्यों को अत्यन्त सीमित करते हुए लिखा है कि अगर राज्य बाहरी व आंतरिक सुरक्षा से अधिक कार्य करेगा तो व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन होगा और सामाजिक व्यवस्था में गड़बड़ी होगी।

जे0एस0मिल अपनी पुस्तक ऑन लिबर्टी में नकारात्मक स्वतंत्रता का जोरदार समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व, शरीर एवं मस्तिष्क का पूर्ण स्वामी है। व्यक्ति को वैसे सभी कार्य करने की पूरी आजादी होनी चाहिए जिसका प्रभाव स्वयं उसके ऊपर पड़ता हो। स्वयं विषयक कार्यों में राज्य

अथवा समाज का किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। व्यक्ति के जिन कार्यों का प्रभाव अन्य अथवा समाज पर पड़ता है, वैसे कार्यों में आंशिक हस्तक्षेप हो सकता है।

बीसवीं शताब्दी में स्वतंत्रता के नकारात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन मिल्टन फ्राइडमैन एवं आइजेया बर्लिन ने किया है। इनका मानना है कि स्वतंत्रता का आधार दमन का अभाव है। मिल्टन फ्राइडमैन लिखते हैं– राज्य द्वारा सामाजिक कल्याणकारी कार्यों का सम्पादन तथा आर्थिक क्षेत्र में उसके द्वारा हस्तक्षेप अनुचित है, क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है।

स्वतंत्रता के नकारात्मक अर्थ में कुछ प्रमुख पहलुओं को निम्नवत् देखा जा सकता है–

1. व्यक्ति अपना हित स्वयं देखता है, इसलिए उसे अपनी इच्छा के अनुरूप व्यक्तित्व विकास की छूट होनी चाहिए।
2. समाज एवं राज्य को व्यक्ति के निजी मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।
3. व्यक्ति के हित एवं सामाजिक हित में विरोध नहीं है। मानव अपने हितों की पूर्ति करके समाज के हितों की पूर्ति करता है।

स्वतंत्रता के उपरोक्त अवधारणा से भिन्न कुछ विचारक आजादी की व्याख्या अलग रूपों में करते हैं। वे स्वतंत्रता के सकारात्मक होने की बात करते हैं। मनुष्य पर किसी प्रकार का बंधन न हो एवं मनमाना कार्य करने की पूर्ण छूट हो –ऐसी स्वतंत्रता घातक है। समाज हमें हत्या या चोरी की आजादी नहीं देता पर यह बंधन हमारी स्वतंत्रता में बाधक नहीं है। अगर ऐसी आजादी मिल जाए तो फिर जंगलराज की स्थिति होगी और उस अराजक वातावरण में सबकी आजादी खतरे में पड़ जाएगी। वास्तविक स्वतंत्रता का अर्थ है– समाज द्वारा उन सभी सुविधाओं को व्यक्ति को दिया जाना जो उसके आत्म–विकास या व्यक्तित्व निर्माण में आवश्यक हो। इस संबंध में लास्की महोदय ने कहा है कि स्वतंत्रता से मेरा अभिप्राय उस वातावरण की स्थापना से है जिसमें मनुष्यों को अपने सर्वोत्तम विकास का अवसर मिलता है। उपयोगितावाद, आदर्शवाद, मार्क्सवाद एवं नव उदारवाद में स्वतंत्रता की अवधारणा समाज को केन्द्र में रखती है। कान्ट, हेगेल, बार्कर, लास्की इत्यादि विचारकों ने व्यक्ति को स्वायत्त इकाई नहीं माना है। वे समाज से विलग व्यक्ति को नहीं मानते। उनके अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर जीवन व्यतीत करता है। व्यक्ति की समस्त गतिविधियाँ समाज में रहकर संचालित होती हैं। अतः समाज के हित में व्यक्ति का हित है। समाज एवं व्यक्ति के हितों के समन्वय में ही व्यक्ति की स्वतंत्रता निहित है। समाज व्यक्ति को विकास के अवसर उपलब्ध कराता है। स्वतंत्रता की अवधारणा में सामाजिकदशाओं की महती भूमिका होती है। इस बात को उल्लेखित करते हुए लास्की कहते हैं कि स्वतंत्रता एक सकारात्मक चीज है, इसका मतलब मात्र बंधनों का अभाव नहीं है। राज्य के कानून स्वतंत्रता का विनाशक नहीं बल्कि रक्षक हैं। यह अवश्य है कि कुछ शासकों द्वारा कुछ ऐसे कानून बना दिए जाते हैं, जो मानव स्वतंत्रता का अपहरण करने वाले सिद्ध होते हैं। पर ऐसे अमानवीय एवं दमनकारी नियम को स्वतंत्रता की अवधारणा में जगह नहीं दी जा सकती है। राज्य के या समाज के कानून जन–भावनाओं के अनुरूप होना चाहिए। इनके निर्माण में किसी वर्ग समुदाय या धर्म को संतुष्ट करने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। राज्य के कानून का उद्देश्य व्यक्ति की इच्छा एवं विवेक की शक्ति को धार देने कीहो। राज्य का कानून व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिए हो। रूसो महोदय का कथन यहाँ पर प्रासंगिक है– व्यक्ति अंततः देश का नागरिक और एक समुदाय का सदस्य है, इसके लिए सच्ची स्वतंत्रता स्वीकृत नैतिकता में प्राप्त हो सकती है। मेकाइवर लोक कल्याणकारी राज्य में विश्वास करने वाले विचारक हैं। वे राज्य को मानव सेवा का साधन मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि राज्य को शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक व आर्थिक प्रगति एवं उद्योगों को बढ़ावा देने का कार्य करना चाहिए। अवसरों का बनाने का काम राज्य का है। वस्तुतः हम देखते हैं कि स्वतंत्रता की सकारात्मक अवधारणा अत्यधिक वृहद् है। इसमें स्वतंत्रता को मात्र आंतरिक एवं बाह्य प्रतिबंन्धों का अभाव नहीं, बल्कि अनुचित के स्थान पर उचित प्रतिबंधों को महत्व दिया गया है। समाज में एक व्यक्ति के कार्य दूसरों के लिए घातक या बाधक न बने इसके लिए कुछ प्रतिबन्धों अथवा नियमों का होना जरूरी है। इस संदर्भ में मैकनी का कथन है कि स्वतंत्रता सभी प्रकार के प्रतिबंधों का अभाव नहीं, वरन् अविवेकपूर्ण प्रतिबंधों के स्थान पर विवेकपूर्ण प्रतिबंधों की व्यवस्था है। एच.जे. लॉस्की का कथन है कि स्वतंत्रता उस वातावरण के प्रबल अनुरक्षण का नाम है जिसमें मनुष्यों को अपना सर्वोत्कृष्ट रूप प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध होता है। अतएव स्वतंत्रता अधिकारों की सृष्टि है।

हम जानते हैं कि कुछ विशेष कार्यों के करने की स्वतंत्रता की विवेकपूर्ण मांग को अधिकार कहा जाता है। अतः स्वतंत्रता एवं अधिकार में अवियोज्य एवं पूरक संबंध है। मानव विवेकपूर्ण स्वतंत्रता का उपयोग करते हुए अपनी क्षमता एवं व्यक्तित्व का निर्माण कर सके इसके लिए समाज अथवा राज्य के द्वारा मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गई हैं। मानव के दो मौलिक अधिकार हैं– आत्मरक्षा एवं आत्मविकास। स्वतंत्रता, सम्पत्ति, समझौता तथा शिक्षा आत्मविकास के साधन हैं। अतः मूलतः अन्य अधिकारों को उपरोक्त दोनों के अंतर्गत रखा जा सकता है। अब हम यहाँ पर स्पष्ट करते चले कि अधिकार मानव की नैतिक मांगे हैं। जो हमारा अन्य व्यक्तियों के प्रति कर्तव्य है, वही उनका अधिकार है और जो उनका कर्त्तव्य है, वह हमारा अधिकार है। वस्तुतः कर्त्तव्य एवं अधिकार सापेक्ष है। यदि मानव के निश्चित अधिकार हैं तो निश्चित कर्त्तव्य भी है। बगैर कर्त्तव्यों के पालन के स्वतंत्रता का वैधानिक या सामाजिक उपभोग असंभव है। अतः मानव को स्वतंत्रता की मांग के अनुरूप ही कर्तव्य पालन पर भी ध्यान देना होगा। मानव के कुछ प्रमुख कर्त्तव्य हैं–

1. जीवन का सम्मान
2. स्वतंत्रता का सम्मान
3. संपत्ति का सम्मान
4. चरित्र का सम्मान
5. सत्य का सम्मान
6. सामाजिक व्यवस्था का सम्मान
7. प्रगति का सम्मान
8. राजकीय आदेशों का सम्मान
9. राजकीय प्रतीकों का सम्मान

वस्तुतः हम कह सकते हैं कि कर्तव्य के निर्वहन के बिना स्वतंत्रता का विवेकपूर्ण उपयोग नहीं हो सकता। अगर मानव कर्तव्यों का निर्वहन नहीं करता तो समाज में उसके अधिकार सुरक्षित नहीं रह पाएंगे। कर्तव्य एक प्रकार की नैतिक व सामाजिक बाध्यता है जिसे उत्तरदायित्व भी कहा जाता है। कर्तव्य बोध के कारण ही मानव को विवेकी विचारा जाता है।

कर्तव्य पालन में 'चाहिए' की भावना का समावेश होने पर वह उत्तरदायित्व में बदल जाता है। कर्तव्य एवं दायित्व का परस्पर अवियोज्य संबंध है। नैतिक कर्तव्यों का पालन नैतिक दायित्व है तथा अनैतिक कर्मों का त्याग भी नैतिक दायित्व है। यहाँ हम पाते हैं कि आजादी में भी एक विवेकपूर्ण बंधन होता है। हमें अपने कर्तव्यों को करना चाहिए तभी हमारी आजादी सुरक्षित रहेगी एवं हम उनका उपभोग करते हुए व्यक्तित्व का निर्माण व विकास कर सकेंगे। यह मेरा कर्तव्य है कि धारणा से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हमें इसे करना चाहिए। अतः कर्तव्य में ही नैतिक बाध्यता अथवा दायित्व निहित होता है। प्रसिद्ध जर्मन विचारक काण्ट ने कर्तव्य को दो प्रकार का माना है– पूर्ण बाध्यता मूलक एवं अपूर्ण बाध्यता मूलक।

पूर्ण बाध्यतामूलक कर्तव्य राजकीय कानूनों द्वारा नियंत्रित होते हैं और इनके उल्लंघन पर दण्ड का प्रावधान होता है। ऐसे कर्तव्यों में चोरी नहीं करना, अपहरण नहीं करना, हत्या नहीं करना इत्यादि शामिल हैं। मनुष्य को इन्हें कतई नहीं करना चाहिए। ये पूर्ण बाध्यतामूलक कर्तव्य हैं, जिनको करने से व्यक्ति अपराधी कहलाता है। अपूर्ण बाध्यतामूलक कर्तव्य व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है। व्यक्ति इन्हें कर भी सकता है और नहीं भी कर सकता है। ये व्यक्ति के चारित्रिक गठन पर निर्भर होते हैं। व्यक्ति का स्वभाव, परवरिश, सामाजिक जीवन, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यादि की भूमिका इसके निर्वहन में महत्वपूर्ण होती है। उदाहरण के लिए –दया करना, दान देना, सहयोग करना, सेवा करना, सत्य बोलना, संयमित रहना आदि अपूर्ण बाध्यतामूलक कर्तव्य हैं जो देश, काल, परिस्थिति एवं व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर होते हैं। इनको न करने से राज्य के द्वारा किसी प्रकार का दण्ड का विधान नहीं होता। ये मानवता एवं सामाजिक जीवन की सफलता के लिए आवश्यकहोते हैं जो व्यक्ति के द्वारा स्वेच्छा से किए जाते हैं। कर्त्तव्य के दो भेद और भी दृष्टिगत होते हैं। नीतिशास्त्र में इन्हें निश्चित कर्त्तव्य एवं अनिश्चित कर्त्तव्य बताया गया है। वैधानिक नियमों से संचालित कर्त्तव्य निश्चित कर्त्तव्य हैं और अंतःकरण के आदेशों से संचालित कर्त्तव्य अनिश्चित कर्त्तव्य हैं। कुछ विद्वानों ने अंतःकरण के आदेश को ही कर्त्तव्य माना है। कालाईल महोदय का कहना है– वही कर्त्तव्य करो जो तुम्हारे निकट हो।

इस संदर्भ में मैकेन्जी कहते हैं कि मनुष्य के कर्त्तव्य का निर्धारण उसकी अंतःप्रेरणाओं पर छोड़ देना चाहिए। महात्मा गाँधी का नीति दर्शन भी अंतस की आवाज को प्रमुखता देता है। उनके विभिन्न आंदोलनों का अवलोकन यह साबित करता है कि नीति संबंधी मामलों में वे आत्मा की आवाज व अंतःकरण के आदेश को सर्वोपरि मानते थे। उनके मतानुसार कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का निर्णायक व्यक्ति की आत्मा से बेहतर कोई नहीं हो सकता। शायद यही वजह है कि गाँधी जी हृदय–परिवर्तन पर अधिक बल देते थे। वे अपने विरोधियों को विवश कर के अभिष्ट सिद्धि नहीं चाहते थे बल्कि वे उनका हृदयपरिवर्तन कर सत्य की सिद्धि चाहते थे। महात्मा गाँधी के विचार में जब हम किसी कर्म के औचित्य पर विचार करने लगते हैं तब हमारे अन्तःकरण से एक आदेश सूचक आवाज निकलती है, किन्तु यह आवाज सभी को सुनाई नहीं पड़ती है। जो व्यक्ति इस आवाज को सुनने और अनुकूल आचरण करने की क्षमता रखते हैं वे निश्चय ही महापुरुष होते हैं।

एफ0एच0 ब्रेडले ने मेरा स्थान और इसके कर्त्तव्य के प्रसंग में बतलाया है कि प्रत्येक व्यक्ति खास परिस्थिति में कुछ गुणों को लेकर जन्म लेता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशेषताएं व विचित्रताएं होती हैं जिनके अनुसार उनका कर्त्तव्य होता है। हिन्दू धर्म ग्रंथ गीता में भी स्वभाव के अनुरूप अपने कर्त्तव्य में लीन रहने की सीख दी गई है। प्राचीन भारत में वर्ण व आश्रम की व्यवस्था कर्तव्यों की समुचित व्याख्या करती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने निर्धारित वर्ण व आश्रम के अनुरूप कर्त्तव्य–निर्वहन करते हुए एक उत्कृष्ट जीवन पाने की बात वहाँ की गई है। निर्दिष्ट कर्त्तव्यों का पालन न होने से समाज व मानव जीवन सहित प्रकृति के स्वरूप में भी विकृति आ जाती है। प्राचीन काल से आज तक विविध शिक्षण–विधियों द्वारा व्यक्ति को कर्त्तव्य–पालन के लिए जागरूक व प्रेरित किया जाता रहा है। वास्तव में ऐसा करके ही व्यक्तियों की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखा जा सकता है। स्वतंत्रता के साथ अधिकार जुड़ा हुआ है एवं अधिकार के साथ कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व जुड़ा हुआ है। वस्तुतः उपरोक्त सभी प्रत्यय परस्पर अवियोज्य एवं सापेक्ष हैं। हम बिना कर्त्तव्य पालन के स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर सकते।

ज्योंहि हम अपनी स्वतंत्रता की मांग करते हैं, त्योंहि हम कुछ कर्मों के प्रति उत्तरदायी हो जाते हैं। स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है, एक मानवीय मूल्य है, इसलिए नहीं कि किसी पारमार्थिक सत्ता से प्राप्त हुई है। वह तो तब भी थी जब तानाशाही एवं निरंकुशता की काली छाया में व्यक्ति अपना वजूद खो दिया था।वास्तव मे स्वतंत्रता जागरूक व साहसी व्यक्तियों की मांग है। इसे सर्वोपयोगी एवं विकास का उत्कृष्ट साधन बनाए रखने के लिए गाँधी एवं मैकेन्जी जैसे मानववादी विचारकों के मार्ग का अनुसरण करना होगा। किन्तु मानव तो आखिर जैसा हॉब्स ने कहा कि स्वार्थी प्राणी है। अतः स्वार्थ प्रेरित कतिपय मामलों के लिए कानून एवं दण्ड के भय द्वारा कर्त्तव्यपालन की वकालत की जा सकती है किन्तु बिना उत्तरदायित्वों का निर्वहन किए मानव स्वतंत्रता के वातावरण को उत्पन्न नहीं कर सकता। वस्तुतः तब वह आदर्श स्थिति होगी जब पृथ्वी को स्वर्ग बनाने का मार्ग प्रशस्त होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त, डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, डॉ0कुलदीप फाड़िया, साहित्य भवन, आगरा।
2. राजनीतिक सिद्धांत, डॉ0 पुखराज जैन, साहित्य भवन, आगरा।
3. नीतिशास्त्र प्रो0 नित्यानंद मिश्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
4. नीति शास्त्र की रूपरेखा, अशोक कुमार वर्मा, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली।
5. राजनीति शास्त्र के सिद्धान्त, डॉ0 बी0एन0 सिंह, साइंटिफिक बुक, कंपनी, पटना।
6. राजनीति विज्ञान एक समग्र अध्ययन, राजेश मिश्रा, ओरिएन्ट ब्लैक–स्वान, हैदराबाद।